साम्प्रदायिक विसंगतियों के संदर्भ में सआदत हसन मंटो की कहानियों का अध्ययन

डॉ. विदुषी आमेटा[1],आरती मिश्रा[2]

1. सहायक आचार्य, हिन्दी-विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा (राजस्थान)

2. शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा (राजस्थान)

किसी समाज या राष्ट्र में जाति-धर्म एवं संस्कृति श्रेष्ठ धारणाएं हैं। एक राष्ट्र की एकता, अखण्डता व नैतिक उत्थान के लिए आध्यात्मिक, धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य आवश्यक भी होते हैं। भारत संसार का प्राचीनतम देश है, जिसे अपने ज्ञान-विज्ञान में वर्चस्व के कारण 'जगत गुरु' कहलाने का गौरव प्राप्त रहा है। यह आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्यों की दृष्टि से भी चरमोत्कर्ष स्थिति रखता है। विभिन्न विदेशी आक्रमणों एवं आक्रमणकारियों के यहीं बस जाने के कारण देश में विभिन्न संस्कृतियों को फलने-फूलने का अवसर प्राप्त हुआ। मुगलों ने सैकड़ों वर्ष भारत पर राज किया। फिर अंग्रेज़ों ने भारत को अपना गुलाम बनाया। स्वाधीनता के लिए संघर्षरत भारतवासियों के अथक प्रयासों को देखकर अंग्रेज़ों को लगने लगा कि अब उन्हें यहाँ से जाना ही होगा। इस माहौल में उन्होंने भारत की एकता को विखण्डित करने और भारत की स्थिति को कमजोर करने के लिए जाति-धर्म के आधार पर हिन्दू-मुस्लिमों में फूट डालो और उन पर शासन करो की नीति अपनायी। जाते-जाते वे भारतीयों के मन में जाति-धर्म के आधार पर 'सांप्रदायिकता' का ऐसा विषैला बीज बो गए, जो विष वृक्ष बनकर देश की एकता एवं विकास के लिए चुनौती बन गया है।

सांप्रदायिकता का अर्थ है- जाति-धर्म के नाम पर स्वयं को श्रेष्ठ मानना और दूसरे जाति-धर्म मानने वालों को निकृष्ट समझकर परस्पर द्वेष पूर्ण व्यवहार रखना व वैमनस्य फैलाकर अशांति का वातावरण फैलाना। इस साम्प्रदायिक विचारधारा के समर्थक देश व समाज में विघटन का कारण बनकर उन्नति में बाधक बनते हैं। अपनी शक्ति का प्रयोग रचनात्मक कार्यों में न करके विध्वंसकारी गतिविधियों में करते हैं और आतंक फैलाते हैं।

पुष्पा भारती के शब्दों में सांप्रदायिकता को इस प्रकार समझा जा सकता है- 'साम्प्रदायिकता है- अपनी पूजा-पाठ-उपासना विधियों, खान-पान, रहन-सहन के तौर-तरीकों. जाति-नस्ल आदि की भिन्नताओं को धर्म का आधार मानना तथा अपनी मान्यता वाले धर्म को सर्वश्रेष्ठ और दूसरी मान्यता वाले धर्मों को निकृष्ट समझना, उनके प्रति नफ़रत, द्वेषभाव रखना और फैलाना। अपनी श्रेष्ठता और दूसरों के प्रति निकृष्टता का यही भाव हमारे सामाजिक विघटन का मूल कारण है क्योंकि इससे आपसी सामाजिक रिश्ते टूटते हैं। परस्पर शंका-अविश्वास के बढ़ने से सामाजिक विभाजन इतना अधिक हो जाता है कि अलग-अलग मानने वालों की बस्तियाँ एक-दूसरे से अलग-थलग होने लगती हैं। यह अलगाव कई आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक कारणों से जुड़कर देश के टूटने का कारण बनता है।''[1]

सांप्रदायिकता की व्याख्या करते हुए विपिनचन्द्र ने लिखा है- ''सांप्रदायिकता का मतलब है, इस बात पर विश्वास करना कि किसी खास धर्म को मानने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हित भी समान होते हैं। यह वही धारणा है जो भारत में हिन्दू-मुसलमान व ईसाइयों और सिक्खों को अलग-अलग समुदाय मानती है, जिसका निर्माण एक-दूसरे से अलग-अलग और बिल्कुल स्वतंत्र रूप से हुआ है। इस धारणा के अनुसार किसी धर्म के सभी अनुयायियों के न केवल धार्मिक हित साझे होते हैं, अपितु धर्मनिरपेक्ष हित भी साझे होते हैं। सांप्रदायिकता की भावना मात्र भारत में ही नहीं संपूर्ण विश्व में फैली हुई है लेकिन भारत में इसका रूप अधिक विकृत दिखाई पड़ता है।........ ब्रिटिश शासन से पूर्व हिन्दू मुस्लिम झगड़ों की जानकारी नहीं मिलती। .... सुमित सरकार के कथन को सत्य माना जाए तो कहा जा सकता है कि 1880 के दशक से पूर्व साम्प्रदायिक दंगे कदाचित ही हुए हो।''[2]

सांप्रदायिक संघर्ष की यह स्थिति धार्मिक मतभेदों के कारण अपने आप उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि अंग्रेज़ों द्वारा भारत में विशेष स्वार्थ निहित उद्देश्य ने हिन्दू-मुस्लिमों के मध्य सांप्रदायिकता की दुर्भावना को बढ़ाने का काम किया। इसके पीछे उनकी यह सोच थी कि दोनों जातियाँ आपस में लड़ती रहे, परस्पर संघर्ष करती रहे और वे उनके झगड़ों का समाधान करते रहे एवं उन पर शासन करते रहे। उनकी इस कूटनीति का परिणाम भारत विभाजन के रूप में सामने आया। ब्रिटिश कूटनीति की यह भारी सफलता थी कि उसने अपनी चालाकी व मक्कारी से भारत के लगभग 6 करोड़ 20 लाख मुसलमानों को भारतीय जन जीवन धारा से पृथक कर दिया। रेम्जे मैक्डोनाल्ड के अनुसार- ''पूर्व विचारित घृणा के आधार पर हिन्दू और मुस्लिम जातियों में घृणा के बीज बो दिए गए।''[3]

'साम्प्रदायिकता' भारतीय राजनीति का अभिशाप रही है, जिसके कारण राष्ट्रीय हितों पर घातक प्रभाव पड़ा है। यह सांप्रदायिकता उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में अपने भीषण रूप में आई। आगे चलकर यह भावना इतनी शक्तिशाली हो गई कि 1947 में देश का विभाजन ही हो गया। यदि भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश राज्य की देन थी तो भारत के राजनैतिक जीवन में विष वृक्ष रूपी सांप्रदायिकता भी ब्रिटिश राज्य की संतान थी।[4]

हिन्दू-मुस्लिम पारस्परिक भेदभाव को बढ़ाने के लिए ही अंग्रेज सरकार ने बंगाल विभाजन की योजना बनाई थी। लार्ड कर्जन ने मुस्लिम बहुल क्षेत्र पूर्वी बंगाल में जाकर प्रचार किया कि यदि बंगाल का विभाजन कर दिया जाए तो यह मुसलमानों के हित में होगा, इसीलिए जब भारतीय राजनेताओं ने इसका विरोध किया तो मुसलमानों ने इसे अपने हितों के विरूद्ध समझा। दोनों में परस्पर दूरियाँ बढ़ती गई और सन् 1905 के आते-आते भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता ने अपनी जड़ें मजबूती से जमा ली। 'भारत के कई भागों में हिन्दू मुस्लिम दंगे हो रहे थे उसमें सहस्रों व्यक्ति मर रहे थे। .... अंग्रेज हिन्दू मुस्लिम मतभेदों का बहाना लेकर भारत में रहना चाहते थे।....... हिन्दू मुस्लिम दंगों को बंद करने व देश में बढ़ती हुई अराजकता से बचने के लिए पाकिस्तान की स्थापना के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था।'[5]

भारत को अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति की बड़ी कीमत भारत विभाजन के रूप में चुकानी पड़ी। सांप्रदायिक दंगों की आग ने जल्दी ही देश भर को अपनी चपेट में ले लिया और दानवता का नंगा नाच

होता रहा। विभाजन के बाद होने वाले खूनी दंगों ने आम आदमी को हिला कर रख दिया। यह बात उसकी समझ से परे थी कि कल तक जो लोग और जो गाँव-शहर उसके अपने थे, अचानक हुए विभाजन से पराए कैसे हो गए ? विभाजन के दर्द में सांप्रदायिक आग बडी तेजी से फैली। उर्दू के प्रसिद्ध और विवादित भी, लेखक सआदत हसन मंटो ने भी इस दर्द को सहा था। विभाजन के समय वे बम्बई में थे और उनका परिवार (विभाजन के बाद का) पाकिस्तान में था। उनके बारे में सोचकर वे बहुत परेशान थे-

"दिमाग मेरा वाकई ख़राब हो रहा था। बीवी-बच्चे पाकिस्तान में थे। जब वह हिन्दोस्तान का एक हिस्सा था तो मैं उसे जानता था। उसमें वक़्तन-फ़वक़्तन जो हिन्दू-मुस्लिम फ़सादात होते रहते थे, मैं उनसे भी वाकिफ़ था। मगर अब उस ख़ता-ए-ज़मीन को नये नाम ने क्या बना दिया था, उसका मुझे इल्म नहीं था। अपनी हुकूमत क्या होती है ? उसकी तस्वीर भी कोशिश के बावज़ूद मेरे ज़ेहन में नहीं आती थी।"[6]

मंटो ने अपने परिवार के व अन्य लोगों के इस दर्द को अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। भारत विभाजन से उत्पन्न इस पीड़ा का यथार्थ चित्रण उनकी कहानी 'टोबा टेक सिंह' में देखने को मिलता है। 'टोबा टेक सिंह' कहानी में बिशनसिंह भारत-पाक विभाजन के दर्द को अपने सीने में लिए ही मर जाता है। बिशन सिंह अपनी धरती से बिछुड़ने का आघात सहन नहीं कर पाया। यह कहानी भारत विभाजन के फलस्वरूप हुई राजनीतिक अस्थिरता के पीछे छिपी साम्प्रदायिकता के उन्माद, मानवीय क्रूरता व राजनीति के खेल की अविस्मरणीय कहानी बन गई।

"बंटवारे के दो-तीन साल बाद पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की हुकूमतों को ख्याल आया कि सामाजिक कैदियों की तरह पागलों का भी तबादला होना चाहिए, यानी जो मुसलमान पागल हिन्दुस्तान के पागलख़ानों में हैं, उन्हें पाकिस्तान पहुँचा दिया जाए और जो हिन्दू और सिख पाकिस्तान के पागलखाने में हैं, उन्हें हिन्दुस्तान के हवाले कर दिया जाए। .... एक सिख था, जिसे पागलखाने में दाखिल हुए पंद्रह बरस हो चुके थे। ...... वह न दिन को सोता था न रात को ...... उसने दूसरे पागलों से यह पूछना शुरू कर दिया कि टोबा टेक सिंह कहाँ है, जहाँ का वह रहने वाला है। उसका नाम बिशन सिंह था, मगर सब उसे टोबा टेक सिंह कहते थे।...... उसे बहुत समझाया गया कि देखो, अब टोबा टेक सिंह हिन्दुस्तान में चला गया है.... अगर नहीं आया है तो उसे फौरन वहाँ भेज दिया जाएगा, मगर वह नहीं माना। जब उसको जबरदस्ती दूसरी तरफ ले जाने की कोशिश की गई तो वह दरमियान में एक जगह इस अंदाज में अपनी सूजी हुई टाँगों पर खड़ा हो गया जैसे अब कोई ताकत उसे हिला नहीं सकेगी.........सूरज निकलने से पहले संज्ञाहीन-जड़वत बिशन सिंह के हलक से एक आकाश-भेदी चीख निकली।

इधर-उधर से कई अफसर दौड़े आए और उन्होंने देखा कि वह आदमी जो पंद्रह बरस तक दिन-रात अपनी टाँगों पर खड़ा रहा था, औंधे मुँह लेटा है- उधर खारदार तारों के पीछे हिन्दुस्तान था, इधर वैसे ही तारों के पीछे पाकिस्तान, दरमियान में ज़मीन के उस टुकड़े पर जिसका कोई नाम नहीं था, टोबा टेक सिंह पड़ा था।"[7]

भारत में सीधी-सादी जनता के कंधों पर रखकर सियासत की बंदूकें चलाई जा रही थीं। लोगों को उकसाया जा रहा था कि जाति-धर्म के नाम पर लड़ मरें। लोगों के दिलों में सांप्रदायिक दंगे एक-दूसरे के प्रति नफरत भर रहे थे। भाई-भाई, दोस्त-दोस्त एक दूसरे की जान के प्यासे हो रहे थे, जबकि उनके पास व्यक्तिगत रूप से इसका कोई कारण न था। मंटो की कहानियों में साम्प्रदायिकता के चित्र इन शब्दों में उकेरे गए हैं-

"अर्सा हुआ अब तक़सीम पर हिन्दू-मुसलमानो में खूँरेज जंग जारी थी और तरफ़ैन के हज़ारों आदमी रोजाना मरते थे। श्याम और मैं रावल पिण्डी से भागे हुए एक सिख खानदान के पास बैठे थे। उसके अफराद अपने ताज़ा ज़ख़्मों की रूदाद सुना रहे थे, जो बहुत दर्दनाक थी। श्याम मुतास्सिर हुए बगैर न रह सका। वह हलचल जो उसके दिल-ओ-दिमाग़ में मच रही थी, उसको मैं बखूबी समझता था। जब हम वहाँ से रूखसत हुए तो मैंने श्याम से कहा, "मैं मुसलमान हूँ, क्या तुम्हारा जी नहीं चाहता कि मुझे क़त्ल कर दो।" श्याम ने बड़ी संजीदगी से जवाब दिया- "इस वक्त नहीं- लेकिन उस वक्त जबकि मुसलमानों के ढाए हुए मज़ालिम की दास्तान सुन रहा था- मैं तुम्हें कत्ल कर सकता था।"[8]

मंटो का 'मुरली की धुन' संस्मरण शुरू तो होता है बम्बई फिल्म नगरी के साथ अपने दोस्तों की यादों से, किंतु धीरे-धीरे बात सांप्रदायिक दंगों पर आ जाती है। ये एक उन्माद था जिसमें खोकर लोग बिना सोचे-समझे जाति-धर्म के नाम पर दंगे कर रहे थे, एक-दूसरे का खून बहा रहे थे। "सन् 47 के हंगामे आए और गुजर गए। लोगों ने बैठकर हिसाब लगाना शुरू किया कि कितना जानी नुकसान हुआ है, कितना माली, मगर करीम दाद उससे बिल्कुल अलग-थलग रहा। उसको सिर्फ इतना मालूम था कि उसका बाप रहीम दाद जंग में काम आया है। उसकी लाश खुद करीम दाद ने अपने कंधों पर उठाई थी। एक कुएँ के पास गढ़ा खोदकर दफनाई थी।

गाँव में और भी कई वारदातें हुई थीं। सैंकड़ों जवान और बूढ़े कत्ल हुए थे। कई लड़कियाँ ग़ायब हो गई थी। कुछ बहुत ही जालिमाना तरीके से बेआबरू हुई थीं। जिसके भी ये ज़ख़्म आए थे, रोता था, अपने फूटे नसीबों पर और दुश्मनों की बेरहमी पर। मगर करीम की आँख से एक आँसू भी न निकला। अपने बाप की शहज़ोरी पर उसे नाज़ था।............. रहीम दाद जो न सिर्फ उसका बाप था बल्कि एक बहुत बड़ा दोस्त भी था, बलवाइयों ने बड़ी बेदर्दी से क़त्ल किया था। .... उसकी कई खड़ी फसलें खराब हो गई थीं। दो मकान जलकर खाक हो गए थे, मगर उसने अपने इन नुकसानों का कभी हिसाब नहीं लगाया था। वो कभी-कभी कहा करता था- "जो कुछ हुआ है हमारी अपनी गलती से हुआ है।"[9]

ये न तो एक गाँव की कहानी थी, और न ही एक करीम दाद की। ऐसे असंख्य गाँव और करीम दाद थे, जिनके अपने इन साम्प्रदायिक दंगों का शिकार बने थे और आँसू पोंछने वाला कोई नहीं था। मंटो ने इसी जातिगत संघर्ष, वैमनस्यता, आम आदमी के कष्टों एवं अव्यवस्थाओं की कहानियों को अपने लेखन में दोहराया है। उनके साहित्य सृजन में इसे पूरी सच्चाई के साथ कई आयामों में जीवंत किया गया है।

भारत विभाजन से जन्मे साम्प्रदायिक दंगों ने आम औरत के जीवन को कितना प्रभावित किया, यह मंटो की कहानियों में स्पष्ट दिखाई देता है। उस समय दरिंदगी का शिकार बनी स्त्रियों की आवाज़ किसी को

सुनाई नहीं दे रही थी। उनके अनुसार नफ़रत हो या बदले का खेल, सब स्त्री की ही देह पर खेला जाता है।

"सन् अड़तालीस की शुरूआत थी। संभवतः मार्च का महीना था। इधर और उधर दोनों ओर रजाकारों के जरिये से अपहृत औरतों और बच्चों की बरामदगी का प्रशंसनीय काम आरंभ हो चुका था।...... जो अस्मतें लुट चुकी थीं, उनको ज्यादा लूटमार से बचाना था- किसलिए ? इसलिए कि उसका दामन और ज्यादा धब्बों और दागों से भरपूर न हो ? इसलिए कि वह जल्दी-जल्दी अपनी लहू से लिथड़ी अँगुलियाँ चाट लें और अपने जैसे मर्दों के साथ दस्तरखान पर बैठकर रोटी खाएँ ? इसलिए कि वह मनुष्यता का सुई-धागा लेकर जब तक दूसरे आँखें बंद किए हैं, सज्जनों के चाक रफू कर दें ?............. अजीब-गरीब दास्तानें सुनने में आती थीं- एक लियाजा अफसर (सम्पर्क अधिकारी) ने मुझे बताया कि सहारनपुर में दो लड़कियों ने पाकिस्तान में अपने माँ-बाप के पास जाने से इंकार कर दिया। दूसरे ने बताया कि जालंधर में जबरदस्ती हमने लड़की को निकाला तो काबिज़ के पूरे खानदान ने उसे यूँ अलविदा कही जैसे वह उनकी बहू है तथा दूर-दराज सफर पर जा रही है- कई लड़कियों के माँ-बाप ने मार्ग में आत्महत्या कर ली। कुछ सदमों की ताव न लाकर पागल हो चुकी थीं।.......... मैं उन बरामद की हुई लड़कियों और औरतों के बारे में सोचता तो मेरे दिल में सिर्फ फूले हुए पेट उभरते- इन पेटों का क्या होगा? उनमें तो कुछ भरा है, उसका मालिक कौन बने - पाकिस्तान या हिन्दुस्तान ? और वह नौ माह की बारबरदारी (भारवाहन) - उसकी उजरत पाकिस्तान अदा करेगा या हिन्दुस्तान ? क्या वह सब जालिम फितरत अथवा कुदरत के बहीखाते में दर्ज होगा ?"[10]

अपनी कहानियों के माध्यम से मंटो ने सांप्रदायिक दंगे फैलाने, स्त्रियों को वस्तु के समान लूटने का चित्रण करके तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता के माहौल की यथार्थता पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'शरीफ़न' भारत विभाजन के समय हुई साम्प्रदायिकता की शिकार बनी स्त्री दुर्दशा को दर्शाती कहानी है। कासिम कहीं बाहर से अपने घर वापस आता है तो प्रवेश करते ही देखता है कि उसकी पत्नी को दंगाइयों ने बलात्कार करके उसे जान से मार दिया है। यह देखकर वह अपने होश खो बैठता है। उसके मन में बदले की भावना उत्पन्न होती है। बदले की आग में जलता हुआ वह हाथ में हथियार लेकर निकल पड़ता है। एक घर के बाहर हिन्दी में कुछ लिखा देखकर वह उस घर में घुस जाता है। उसे सामने एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की दिखाई देती है। वह उसके साथ बलात्कार करके उसे मार देता है। इस तरह अपनी पत्नी के अपमान व मौत का बदला दूसरे धर्म की स्त्री का अपमान करके ले लेता है। दोनों ही स्थितियों में साम्प्रदायिकता की शिकार स्त्रियाँ ही हुईं हैं।

साम्प्रदायिक दंगाइयों की नजर में स्त्री जीती-जागती इंसान न होकर उपभोग की वस्तु थी। 'ठंडा गोश्त' कहानी भारत विभाजन के समय स्त्रियों की दुर्दशा का का यथार्थ चित्रण करती है। कहानी का पात्र ईशर सिंह भारत-पाक बँटवारे के दंगे में एक घर को लूटकर छह सदस्यों को मार देता है और सातवीं सदस्य एक लड़की को बलात्कार की मंशा से एक वस्तु की तरह कंधे पर डालकर ले जाता है। मंटो ने अपनी कहानियों में साम्प्रदायिक दंगों के दौरान हुई स्त्रियों की दुर्दशा का ऐसा खाका पाठकों के सामने खींचा है कि लगता है मानो घटनास्थल पर खुद मौज़ूद रहे हो। ऐसा चित्रण पाठकों के दिमाग को झकझोर कर

रख देता है। विभाजन के समय विस्थापित हो रहे परिवारों की स्त्रियों के हुए अपहरण, उनके साथ हुए बलात्कार साम्प्रदायिकता की विभीषिका का यथार्थ चित्रण करते हैं ।

उनकी कहानी 'खोल दो' सांप्रदायिक दंगे फैलाने वाले दरिंदों और तथाकथित समाज सुधारकों के हाथों लुटती हुई नारी देह के प्रति उनकी असंवेदनशीलता को दर्शाती है। सिराजुद्दीन अपने परिवार के साथ अमृतसर से पाकिस्तान जा रहा था। उसके परिवार में उसकी पत्नी व एक बेटी थी। सफर के दौरान बीवी का कत्ल कर दिया गया और बेटी का अपहरण। यह एक परिवार की कहानी नहीं थी, ऐसी दिल दहला देने वाली कहानियाँ कितने स्थानों पर दोहराई जा रही थीं, इनका कोई हिसाब नहीं है। धर्म, नैतिकता एवं मानवता पर कुठाराघात करती ऐसी अनेक घटनाएँ उस दौर में घटी थीं। दंगों व आगजनी के बाद शहरों की जो बदहाली हुई, उस हालत के बारे में वे कहानी 'सौ कैण्डल पावर का बल्ब' में लिखते हैं -

''यही पार्क जो सिर्फ दो बरस पहले पुररौनक़ जगह थी, अब उजड़ा-पुजड़ा दिखाई दे रहा था। जहाँ पहले औरत और मर्द शोख़ो-संग फ़ैशन के लिबास में चलते-फिरते रहते थे, वहाँ अब बेहद मैले-कुचैले कपड़ों में लोग इधर-उधर बेमक़सद फिर रहे थे; बाज़ार में काफी भीड़ थी, मगर वह रंग नहीं था, जो कभी वहाँ मेले-ठेले की तरह हुआ करता था।''[11] आम आदमी की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई थी। लोगों के पास रहने-खाने को पैसा नहीं बचा था। लोग घुटनभरा जीवन जीने को विवश थे। दंगाइयों ने लोगों को खूब लूटा, घरों को आग लगा दी और मकानों को तोड़ा। ऐसा लगता था मानो कोई तूफ़ान आकर गुजर गया हो। मंटो भी तत्कालीन समाज की पीड़ा व समस्याओं से रूबरू हुए और उनका संवेदनशील मन आक्रोश से भर उठा।

इसी प्रकार कहानी 'गुरमुख सिंह की वसीयत' में रिटायर्ड जज मियाँ अब्दुल ने रिटायर्ड होने से कुछ पहले गुरमुख सिंह का कुछ काम किया था, उसको एक झूठे मुकदमे में फँसने से बचाया था। तब से वह ईद पर हर बार उनके लिए सेंवई लाया करता था। इसी बीच साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। चारों ओर मारकाट मच गई। आदमी आदमी के खून का प्यासा हो गया। ईद का त्योहार आया। इस बार गुरमुख सिंह का बेटा सेंवई लेकर आया, किंतु अपने मृत पिता को दिए वचन के कारण नहीं बल्कि दंगाइयों का साथ देने के लिए, उनका जासूस बनकर आया जो मियाँ अब्दुल के परिवार को मारना चाहता था। यह कहानी दर्शाती है कि कृतज्ञता पर साम्प्रदायिकता भारी पड़ गई और मानवता को शर्मिंदा होना पड़ा।

मंटो की लेखनी भी इन तत्कालीन घटनाओं को यथार्थ रूप में पाठकों तक पहुँचाने को मचल उठी। उन्होंने अपनी कहानियों में साम्प्रदायिक दंगों से उत्पन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रांकन किया है। जब हम मंटो के साहित्य को पढ़ते हैं, तो हमें तत्कालीन भारत में फैली साम्प्रदायिक कुरूपता का वीभत्स चित्रण प्राप्त होता है।

सांप्रदायिकता एक ऐसी विचार धारा का नाम है जिसमें अलग-अलग धार्मिक समुदाय अपने हित साधने के लिए पारस्परिक विरोधी गतिविधियाँ करके आम जनता के बीच आतंक फैलाने का काम करते हैं। अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए सांप्रदायिकता का जो विष बीज बोया, वह आज विशाल वृक्ष

बनकर अपने हलाहल से देश के वातावरण को विषाक्त कर रहा है। मंटो ने अपनी कहानियों में सांप्रदायिकता से उत्पन्न जिन परिस्थितियों, घटनाओं एवं समस्याओं को दर्शाया है, वे आज भी समाज में व्याप्त हैं। मंटो का लेखन साम्प्रदायिक विद्रूपताओं के समाधान की मांग करता प्रतीत होता है। सामाजिक सद्भाव व तर्कशीलता से देश निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहता है। धर्म को सहिष्णुता व तार्किकता से स्वीकार करना होगा, तभी आजादी की खुशी में जी पाएंगे और देश विकास की ओर अग्रसर हो पाएगा।

संदर्भ सूची-

1. पुष्पा भारती, शैशव, https://shaishav.wordpress.com/2009/10/9

2. डॉ. सुशीला शक्तावत, सांप्रदायिकता और मुस्लिम लीग की भूमिका, आधुनिक भारत का इतिहास, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली, प्रथम सं 2004, पृ.सं. 338

3. सुशीला शक्तावत, सांप्रदायिकता और मुस्लिम लीग की भूमिका, आधुनिक भारत का इतिहास, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली, प्रथम सं 2004, पृ.सं. 351

4. डॉ. दीनानाथ वर्मा, मुस्लिम सांप्रदायिकता का उदय, आधुनिक भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2004, पृ.सं. 288

5. रश्मि पाठक, भारत छोड़ो आन्दोलन, स्वतंत्रता तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पराजय, भारत में अंग्रेजी राज, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ.सं. 415

6. मुरली की धुन, सआदत हसन मंटो पर संस्मरण, गंजे फरिश्ते, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2012, पृ.सं. 24

7. सआदत हसन मंटो, टोबा टेक सिंह, एक प्रेम कहानी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रकाशन, वर्ष-2002, पृ.सं.- 59-64

8. मुरली की धुन, सआदत हसन मंटो पर संस्मरण, गंजे फ़रिश्ते, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2012, पृ.सं. 25

9. सआदत हसन मंटो, यज़ीद, सन् 1919 की एक बात, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ.सं. 80, 81

10. सआदत हसन मंटो, खुदा की कसम, खुदा की कसम, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ.सं. 78,79.

11. सआदत हसन मंटो, सौ कैण्डल पावर का बल्ब, मंटो की अमर कहानियाँ, मारूति प्रकाशन मेरठ, पृ.सं. 97